प्रतियोगी

हिन्दी ADDA

नीलाक्षी सिंह

प्रतियोगी

बात शुरू होती है पाकड़पुर सदर की चिल्लागंज चौमुहानी से। एक रास्ता जगदंबा पुल की ओर से होता हुआ सरपट भागा आता था। वहाँ, जहाँ से दो रास्ते दायें-बायें फूटते थे। उस जगह ठिठककर फिर वह रास्ता नाक की सीध में आगे बढ़ जाता था। साल रहा उन्नीस सौ चौरानबे। चौमुहानी से सटे दाहिने (यदि जगदंबा पुल वाले

सरपट रास्ते से आयें तो), गाँधी बाबा के तीन बंदरों की तर्ज पर तीन बेचनहार बैठते थे। जाड़े के दिनों में आप उन्हें देखें, तो बंदरों वाली बात बस बात नहीं लगेगी, सत्य प्रतीत होगी। अंतर बस आप यही ढूँढ़ पाएँगे कि इन तीनों में से बंदर एक है बाकी दो बंदरियाँ हुईं। तीनों में से पहला मोटा, खदबदा मफलर लपेट कर दोनों कानों को मूँदे रहेगा, तीनों में से दूसरा मतलब दूसरी, फूलदार लाल शॉल को नाक के ठीक नीचे से मुँह लपेटकर मुँह मूँदे बैठी रहेगी और तीनों में से तीसरी, काली शॉल को आँखों के ऊपर ऐसे लपेटकर ओढ़ेगी कि आँखों से उसे तो दिखाई देगा, पर वे आपको मुँदी प्रतीत होंगी।

मफलर वाले छक्कन प्रसाद। छक्कन प्रसाद के अतीत से एक विचित्र किस्सा जुड़ा था, जो उनके वर्तमान चित्र पर रोशनी डालता था। कभी छक्कन प्रसाद की मूँछें दोनों कोरों पर पहुँचकर, ऊपर की ओर बढ़ी हुआ करती थीं। डेढ़ इंच ऊपर तक वे बेबाध बढ़ गयी थीं।दसेक साल हुए, आम चुनावों का मौसम था। छक्कन प्रसाद दिल से ये चाहते थे और दिमाग से ये महसूसते थे कि पकड़पुर सदर से 'पंजा' ही निकले। उन्होंने स्वयं भी जुलूसों में और भाषण-सभाओं में अपनी हैसियत भर सक्रियता दिखायी। जोश था और विश्वासभी। तभी, उन्हीं के समान जोश और प्रतिकूल विश्वास वाले किसी मसखरे से चुनाव परिणाम की अटकलों को लेकर उनकी भिड़ंत हो गयी। मसखरे के नाम को तो वक्त की गर्द ने दाब दिया। लिहाजा अब उसका नाम किसी को याद नहीं। पर उसकी शर्त का काल कुछ न बिगाड़ सका। शर्त थी ही कद्दावर - 'पंजा' जीतता तो मसखरा सिर मुड़ाता और यदि 'पंजा' हारता तो छक्कन प्रसाद के एक हिस्से की अग्रगामी मूँछ पर ओले पड़ते। मतलब छक्कन प्रसाद की एक तरफ की मूँछ तो यथावत रहती, दूसरी तरफ की मूँछ के ऊपर की ओर बढ़े हिस्से का सफाया उन्हें करना होता। छक्कन प्रसाद अड़ गये। चुनाव परिणाम आये तो लेने के देने पड़ गये। 'पंजा' गया कबाड़ में। मूँछ गयी भाड़ में। छक्कन प्रसाद थे उसूल के तपे हुए, शर्त पूरी की। न सिर्फ तभी, बल्कि आज तक वे उसी विचित्रता को लिये, सिर उठाकर जिये चले जा रहे थे। वे जुबान से हारे जरूर, लेकिन कर्म से जीत गये। इसलिए सनाम उनका किस्सा कस्बे भर की जुबान पर लगा था, आज तक। छक्कन प्रसाद चिल्लागंज की उसी चौमुहानी पर आग उगलने वाले दो मुँहें चूल्हे के आगे पालथी मारकर बैठते थे। चूल्हे के एक मुँह पर चढ़ी रहती, एक बड़ी सफेद कड़ाही। दूसरे पर चढ़ती लोहे की काली कड़ाही। पहली वाली में डालडा खलबलाता रहता और उसमें मैदे के घोल की छोटी-छोटी भूलभुलइयाँ सिंकती रहतीं। दूसरी में चाशनी तपती रहती। पहली कड़ाही से निकाली चीजें, दूसरी में डाली जातीं और उससे निकलने के बाद वे कहलातीं जलेबियाँ। हालाँकि वहाँ आनेवाले ग्राहकों में से तैंतीस

प्रतिशत, जिसमें महिलाओं और बच्चों की संख्या भारी थी, ऐसे भी थे जो उन्हें 'जलबेली' नाम से जानते थे।

फूलदार लाल शॉल वाली जो रही, वह थी दुलारी। दुलारी थी, छक्कन प्रसाद की पत्नी बाद में। उसके सामने वाले चूल्हे पर भी काली कड़ाही चढ़ती थी। लेकिन उसमें तीसी का तेल कड़कता और फिर खिसारी की दाल की छोटी-छोटी गोलियाँ कुरकुरी होने तक सिंकती जातीं। भरपूर लालमिर्च, अदरक और लहसुन वाली ये नमकीन चटपटी चीज, वहाँ आने वाले तमाम ग्राहकों में कचरी के नाम से विख्यात थी। दुलारी का हिसाब कच्चा और बेहद गिटपिटा-सा था। लेकिन ग्राहकों के सामने वह ऐसी मजबूत तनी बैठी रहती कि उसके आक्रामक गेटअप को देखकर ग्राहकों के लिए यह थाह लगाना असंभव-सा था कि इसे आसानी से और कसकर ठगा जा सकता है। लोग इस मुश्किल अनुमान को अक्सर लगाना चाहते थे कि छक्कन प्रसाद और दुलारी जैसे दो दृढ़-प्रतिज्ञ और गैर-लचीले व्यक्तियों का पिछले सोलह-सतरह साल से साथ बना कैसे रह पाया है! दो उँगलियाँ एक अँगूठी में रह सकती हैं! दोनों पहले से खींची लकीर के फकीर नहीं थे। इन्होंने अपने लिए लकीरें खींचीं पहले, तब उस पर फकीरई की। फिर भी न सिर्फ दोनों की गृहस्थी आबाद थी, बल्कि धंधा भी आबाद था। कारण? दुलारी का रुपये-पैसे का हिसाब चाहे जितना कच्चा हो, आपसी रिश्ते में प्यार और सम्मान के अनुपात का हिसाब उनका उतना ही पक्का था, जितना छक्कन प्रसाद का। छक्कन प्रसाद और दुलारी कभी-कभी अपने-अपने आसनों की अदला-बदली भी किया करते थे। इससे काम की एकरसता भंग होती और स्वाद बना रहता। हालाँकि ये अंदर की बात थी कि निहायत सेंसेटिव पलों में दुलारी इक्कीस पड़ जाती और छक्कन प्रसाद स्वेच्छा से दब जाते। दुलारी का इतिहास था ही ऐसा प्रचंड।

दुलारी, उम्र छत्तीस साल, की स्वर्गीया माँ भी पाकड़पुर सदर के चिल्लागंज की इसी ऐतिहासिक चौमुहानी तक तरकारियाँ बेचा करती थी। अंग्रेजी राज था। वह किंवदंती, लोककथा और इतिहास, तीनों सरहदों को एक साथ नाप चुका किस्सा कुछ इस प्रकार था - बिहुली देवी एक शाम तरकारियाँ सजाये इसी अड्डे पर बैठी थीं। तभी कोई गोरा साहब पहुँचा वहाँ छड़ी घुमाता। उसने छड़ी से टोकरी की तरकारियाँ उकेरनी शुरू कर दीं। वह साहब संभवतः टोकरी के सर्वोत्तम माल की तलाश में था। बाँकुरी बहुली देवी ने उसकी छड़ी की नोक पकड़ ली। एक साँस में सारी तरकारियों के दाम गिनाये और अपनी औकात लायक अंग्रेजी में और साहब की सँभाल लायक हिंदुस्तानी में जोड़ा, "टेक बे तऽऽ टेक न त गोऽ!" गोरा साहब हतप्रभ बक्क... ठकमकाता हुआ चला वहाँ से, बिना कुछ 'टेके'। दुलारी इन्हीं वीरांगना की आठवीं

और अंतिम संतान रही। कथा-तत्व के स्थान संबंधी सूत्र से स्पष्ट है कि दुलारी का मायका यही कस्बा था। छक्कन प्रसाद हीआयातित चीज थे। ज्यादा दूर से नहीं, बस नदी पार के गाँव से लाये गये थे। ये पूरा क्षेत्र एक ही कस्टम यूनियन में आता था। इसलिए उनके आने पर कोई आयात शुल्क नहीं लगा था। छक्कन प्रसाद ब्याह के फौरन बाद यहाँ आकर बस चुके थे। कारण कि बाँकुरी बिहुली देवी की पहली की सातों संतानें मैदान छोड़कर भाग चुकी थीं। ऊपर।

छक्कन प्रसाद और दुलारी के चक्कर में बात के आरंभ से ही काली शॉल वाली जिस तीसरी को हम चिल्लागंज चौमुहानी पर छोड़ आये हैं, उसका अपना कोई नाम न था। जमाने पहले, वह ब्याह कर यहाँ आयी थी और ब्याह के इने-गिने दिन बाद ही इसके पति के दिन पूरे हो गये थे। तभी जमाने ने एक विशेषण विशेष का व्यक्तिवाचक संज्ञा में रूपांतरण कर दिया था और तीसरी का नाम पड़ गया - मुसमातिन। तब से क्या बच्चे, क्या सयाने सबमें यही नाम चल निकला। मुसमातिन की ननदें फौज भर थीं, देवर एक था - उसके ब्याह के एक-आध महीने पहले का जन्मा। सास ने मुसमातिन की गोद में उसी बच्चे को डाल दिया। मुसमातिन ने उसे पोसा। फिलहाल स्थिति ये बनती थी कि वह देवर तीन पुश्तों तक अपनी जड़ें फैला चुका था। मुसमातिन उसके द्वारा और उसके बेटों के द्वारा धकियाकर घर से बाहर निकाल दी गयी थी कि उस देवर के पोते हाथ-पैर चलाने लायक तो हो चुके थे लेकिन लक्ष्य होगा कौन, ये निर्धारित करना अभी नहीं सीख पाये थे। वरना मुसमातिन को तीन पुश्तों की सम्मिलित ताकत झेलनी पड़ जाती। तो इस मुसमातिन के पास भी चौमुहानी पर एक चूल्हा था। जिस पर चढ़ी कड़ाही के खौलते तेल में बेसन की लिपटी प्याज की चपटी-चपटी बड़ियाँ तली जाती थीं - प्याज की पकौड़ियाँ, जिसे वहाँ आने वाले ग्राहकों में से नब्बे प्रतिशत 'पिअजुआ' कहते थे।

अलस्सुबह से ये जलेबी, कचरी और पिअजुआ मिलकर ऐसा समा बाँधते कि चिल्लागंज चौमुहानी से बिना पैसा खर्च किये बचकर निकल जाना मुश्किल पड़ जाता। इन तीनों काअपने व्यवसाय में यहाँ एकाधिकार था और तीनों के तीनों प्रतियोगीविहीन थे। जो भी ग्राहक आता वह एक को खरीदकर बाकी दो की दो को खरीदकर बेचारे एक की अनदेखी न कर पाता और ये तीनों मिलकर अहिंसा से उसे लूट लेते। अब होता ये रोज वहाँ, कि दुलारी अपने बोरे के नीचे भरी हुई पुरानी कॉपियाँ दबाकर बैठती थी और माँग के अनुसार छक्कन प्रसाद और मुसमातिन को पन्नों की पूर्ति कराती जाती। रैट, कैट, फैट, जोड़-गुणा की करामातों से भरे, चाशानी

और तेल से सने पन्ने चारों ओर मस्ती से दिन भर उड़ा करते। कॉपी के पन्नों के इस खेल में छक्कन प्रसाद और दुलारी देवी के बाल-गोपाल - टिंकू, पिंटू, मिंटू और रिंकू की चाँदी थी। वे धड़ाका स्पीड से सादी कॉपियाँ भरते। तिस पर भी पुरौती न होती, तो छक्कन प्रसाद कबाड़ी से कॉपियाँ खरीदते और दुलारी रोज शाम मुसमातिन से पन्नों की एवज में दो रुपइया वसूलती।

टिंकू, पिंटू, मिंटू, रिंकू जब पढ़ने बैठते, तो छक्कन प्रसाद और दुलारी - दोनों के कलेजे जुड़ा जाते। छक्कन प्रसाद बस सीधा कामचलाऊ हिसाब-किताब जानते थे। उनकी शैक्षणिक पृष्ठभूमि से भी एक हिस्सा जुड़ा था। उनके कैरियर का सबसे दिलचस्प और खतरनाक मोड़। छक्कन प्रसाद के बाबूजी थे पहलवान तबीयत के आदमी। गाँव की नहर से लेकर जगदलपुर थाने तक पाँच कोस दौड़ते जाते थे रोज सुबह। मिले तो, छह-सात किलो दूध एक साँस में गटक सकते थे। हालाँकि ऐसा सुयोग उनका कभी बना नहीं। नाक पर गुस्सा चौकन्ना रहता। मतलब कुल मिलाकर ये कि कोई उनसे भिड़ना चाहता न था। छक्कन बाबू भी बचपन से मनबढ़ू थे। भर गाँव में एक ही साक्षर कलवार मास्टर बाबू थे। देश आजाद हुए बमुश्किल एक दशक बीता था। वे अपने गोतिया-नइया के बच्चों का अक्षरों के साक्षात्कार करवाकर, समाज-सुधार की किस्म का कुछ करना चाह रहे थे। पर बच्चे क्या थे, छुट्टा बनैले थे। बिना छड़ी के अक्षर लोक में प्रवेश करना तो दूर, सही से बैठ भी न पाते थे। तीसरा न चौथा ही दिन रहा होगा, उद्दंड छक्कन प्रसाद को काबू में करने के लिए मास्टर बाबू ने उनके सामने की जमीन पर दो मर्तबा सटासट छड़ी बजायी। तीसरी बार वेग से उठी छड़ी जमीन पर पड़ती ही कि छक्कन प्रसाद ने मंतर मारकर उसे रास्ते में ही रोक दिया। दूसरे बच्चे भी छँटे बदमाश थे, पर गुरुजी की छड़ी को बीच रास्ते पकड़ना उनके शौर्य के बूते का न था।

मास्टर बाबू की कहानी खत्म नहीं हुई। उनको और भी बुरे दिन देखना लिखा था। पहलवान पिता ने जब यह सुना, तो क्रोध से करिया गये। जाहिर है क्रोध का कारण यह नहीं था कि छक्कन प्रसाद ने मास्टर की छड़ी पकड़ी, बल्कि यह था कि मास्टर बाबू ने पहलवान-पुत्र पर प्रहार का प्रयास किया। सच कि झूठ पता नहीं, लेकिन कहते हैं कि पहलवान-प्रकोप से मास्टर बाबू को आगे की मास्टरी अपने ममहर जाकर करनी पड़ी। बाद में बड़े होने पर, शादी-वादी के बाद संभवतः, छक्कन प्रसाद ने काम के लायक हिसाब सीखा। और दुलारी देवी! उनकी तो बड़ी मार्मिक दास्तान है। बकौल उनके, उनको पढ़ाई कभी धारती ही न थी। पहली बार उन्होंने सिलेट छुआ, तो जिसकी पीठ पर की वे पैदाइश थीं वही, उनसे बड़ा वाला भाई चल बसा,

दूसरी बार जब सिलेट देखा, तो पिता जाते रहे। बस उसके बाद जो दोनों में छत्तीस का रिश्ता हुआ तो दुलारी देवी मौखिक जोड़-घटाव भी न सीख पायीं। अब तो खैर कचरियों का रेट चवन्नी से बढ़कर अठन्नी हो चुका था और हिसाबों का रेंज अपेक्षाकृत कम हो गया था। पर पहले जब इनका दाम चार आने था, तब हाल ये था कि सिनेमावाला दस रुपइया दे और पौने सात का सौदा हो तो, उसे लौटाया जाएगा क्या, ये सिखाने के लिए छक्कन प्रसाद दुलारी देवी पर भिड़े रहते। लेकिन वो कोई रिस्क न लेतीं और ऐन मौके पर छक्कन प्रसाद की ओर इशारा करके ग्राहक को सख्ती से बोल देतीं, हुनके दे देम... बस! ऐसे में बच्चे चारों पढ़ जाएँ हिसाब-किताब, ये बड़ी ख्वाहिश थी अनपढ़ माँ-बाप की। हो भी ऐसा ही रहा था। सरकारी स्कूल में टिंकू, पिंटू, रिंकू, क्रम से चार कक्षाओं में पढ़ रहे थे। तीन बेटों के बाद हुई तेतरी बेटी, अन्य तेतरी बेटियों की तरह ही साक्षात लक्ष्मी माता का वरदान थी, माँ-बाप को। उसके जन्म के साल ही स्वर्गीया बिहुली देवी की झोंपड़ी, जो इकलौती जीवित वारिस होने के कारण दुलारी को मिल गयी थी, को ईंट-माटी का सहारा देकर थोड़े ढंग का ठौर बना लिया था उन्होंने। अब तो तीनों बेटे थोड़ा-बहुत पढ़-लिखकर धंधा सँभाल लें। फिर किस बात की फिकर थी? सुख से दिन निकल रहे थे, आगे भी निकलेंगे... ऐसा सोच रही थी दुलारी। छक्कनप्रसाद भी ऐसा ही सोच रहे थे। पर आज आप जो सोचते हैं, कल भी वही सोचते रहें... वही सोचते चले जाए... जरूरी है क्या?

एक सफेद दाढ़ी वाला बूढ़ा जादूगर था। वह अपने सामने पड़नेवालों के मन को जिस्म से अलग कर देता और उनके मन को अपनी तलहथी पर धर लेता। तब उस मन पर सिर्फ तलहथी का वश रह जाता। मन उछलकर उधर ही गिरता, जिधर तलहथी उसे उछालकर गिराना चाहती थी। इस मायावी बूढ़े जादूगर का संसारी नाम था - बाजार। तो देश के अन्य कस्बों की तरह ही पाकड़पुर सदर की ओर भी जब बाजार ने रुख किया, तो कस्बे में हड़कंप मच गया। वह आ रहा है... वह आ रहा है... बाजार आ गया है... लोग बदहवास भागने लगे। इस देश के इतिहास में एक शक्तिशाली विदेशी आक्रमणकारी के आने पर पहले से बसे लोग जैसे जान-जी लेकर भागा करते थे, वैसे ही भागते जाते थे ये भी। लेकिन इस लुटेरे ने भागते लोगों का पीछा नहीं किया। ये मोहिनी मंतर में माहिर बूढ़ा, एक जगह जम गया और इसने बीन बजानी शुरू कर दी। लोग देशी साँपों की मानिंद जुटे या बच्चों को सुनाई जाने वाली एक प्रसिद्ध विदेशी कथा के चूहों की मानिंद इसका कोई मतलब नहीं। बस यही अहम है कि लोग जुटे उसके गिर्द और फिर मन को अलग करके तलहथी पर धरने और उछालने का कार्यक्रम शुरू हुआ। बूढ़े के गिर्द भीड़ लगाने वालों में बाबू छक्कन प्रसाद भी एक हुए। उनका मन भी बूढ़े की गदबदी तलहथी पर फुदक-फुदक

उछलने लगा और वे सोचने लगे... वो नहीं जो अब तक सोचा करते थे... उससे अलग... बहुत अलग कुछ... सोच की प्रस्तावना इस मार्मिक बिंदु से आरंभ होती थी कि मैं पैदा हुआ छक्कन प्रसाद बनकर... जिये जा रहा हूँ छक्कन प्रसाद बनकर... क्या मरूँगा भी छक्कन प्रसाद बनकर ही? मेरी जरूरतों... इच्छाओं का घेरा कभी बढ़ेगा नहीं क्या? बढ़ा भी तो क्या तब मैं अपनी आत्मा की चाह को तृप्त कर पाऊँगा... टिंकू, पिंटू, मिंटू... सबके आगे दो-दो कड़ाही और बायीं तरफ एक कड़ाही वाली घरवालियाँ... यही भविष्य का चित्र सजेगा? रिंकू की विशेष फिक्र न थी। वह तो कटकर अलग होने के लिए ही पैदा हुई थी।

अपने हाथ की चीज वह नहीं थी लेकिन जो थे वे उनका क्या? एक सड़क छाप हलवाई के बेटों के भाग्य, उसी की किस्मत की फोटो प्रति क्यों हो? जब फकीरई ही करनी है, तो एक ढंग की लकीर खींची जाए। बेढंगी लकीर पर धूनी रमाने से? लेकिन एक मामूली इनसान किस्मत से होड़ सकता है क्या? छक्कन प्रसादई ही अगर किस्मत में लिखी हो तब! हें? बिना कर्म किए आपके लिए सुरक्षित रखा फल भी कभी मिला है क्या? कर्म कैसा? क्या किया जा सकता है...? छक्कन प्रसाद रुँआसे हो गये। उन्होंने छटपटाकर चादर फेंक दी और बिस्तर पर उठ बैठे। यही महाभिनिष्क्रिमण की घड़ी थी, उन्हें लगा। उन्होंने बायीं तरफ मुड़कर देखा, दुलारी खर्राटे खींचती थी। गरदन घुमाकर उन्होंने देखा, चारों बच्चे छितराये पड़े थे। वे ज्ञान की तलाश में तत्क्षण गृहत्याग कर सकते थे, पर सिद्धार्थ की तरह उनके मार्ग की बाधा यशोधरा और राहुल का दोतरफा आकर्षण मात्र नहीं था। छक्कन प्रसाद तो पाँच प्रणियों के पंचतरफा से बिंधे पड़े थे। वे वापस बिस्तर पर पटाजरूर गये, लेकिन दिमागउनका दौड़ता रहा... इस अठन्नी, चवन्नी... के दलदल से निकलकर मैं संसार की आकर्षण चीजों का आनंद उठा पाऊँगा क्या? खोजने से भगवान भी मिल जाते हैं, उन्हें तो बस जवाब चाहिए था। अदना-सा ज्ञान।

तो विक्रम संवत दो हजार इक्यावन, वैशाख अमावस्या की रात छक्कन प्रसाद को दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हुई। उनके मन में उठने वाले तमाम नैराश्य भाव से सने प्रश्नों का उत्तर था "नहीं" और आशा झलकाते सवालों का जवाब हुआ "हाँ"। जिंदगी का एक नया मकसद पा चुके थे छक्कन प्रसाद और ज्ञान प्राप्ति के अगले ही दिन उन्होंने चिल्लागंज चौमुहानी पर एक स्मरणीय घोषणा की। घोषणा के शुरू के तीन शब्द थे - अलविदा, कचरी जलेबी! घोषणा में आगे ये था कि वे अपनी संचित जमा पूँजी से बृहत पैमाने पर हलवाईगिरी करेंगे और बनेंगे क्या... समोसे, लालजामुन, कचौड़ियाँ... पत्ते के प्लेटों में बिकने वाले पकवान। जिस संचित जमा-पूँजी का जिक्र

घोषणा में आया था, उसका दो तिहाई हिस्सा उनके पिता की कमाई का था। हुआ यों था कि उनके पहलवान पिता सचमुच दुनिया में खाली हाथ आये थे। बड़ी खस्ताहाली के दिन थे। रोज कमाओ, तब खाओ वाली बात थी। धीरे-धीरे-धीरे सबकुछ पटरी पर आया। पहलवान पिता जब सयाने हुए तो जमींदार के बगीचे की देखभाल करने लगे, माली हालत ऊँची होती गयी। इसमें आय से ज्यादा व्यय का योग था क्योंकि रुपइया खरचने में वे अद्भुत चिल्लर जीव थे। उनके बारे में सुना जाता था कि वे अपनी मैल तो क्या, बुखार तक दूसरे को नहीं दे सकते थे, हाथ बढ़ाकर। खाली हाथ जन्मा पहलवान जब जाने लगा, तो दो गाय, एक भैंस, कुछ बकरियाँ ठीक-ठीक कामचलाऊ घर, परती जमीन और तीन बेटे छोड़ गया। छक्कन प्रसाद इनमें से एक थे। वे अपने हिस्से में पड़ी चीजें बेच आये। दुलारी ने उन पैसों को एकदम अलग रखवा दिया और अपने साथ-साथ छक्कन प्रसाद को भी उन्हें किसी ऐरे-गैरे प्रयोजन हेतु न छूने की कसम खिलवा दी। हालाँकि उनकी ताजी घोषणा ऐरी-गैरी न थी, लेकिन दुलारी ने सुना तो भौंह चढ़ा लिये - कहो तो? जब गाड़ी खिंच ही रही हो ट्यूनिंग से, तो जमा-जमाया काम छोड़कर दूसरी अनजानी चीज में हाथ धरने की बात, उसके गले तक गयी और वापस मुँह के रास्ते बाहर उगला गयी। छक्कन प्रसाद ने भाँति-भाँति से उसे प्रबोधा। अपने विचार मंथन से मथ-मथकर प्राप्त कुछ मोती हाजिर किये लेकिन दुलारी उगले हुए को फिर से निगलने को तैयार न थी।

तब बाजार नाम के बूढ़े जादूगर की तलहथी पर उकड़ू सवार प्रसाद, उछलकर साझे के धंधे से अलग हो गये। फलतः कचरी और जलेबी व्यवसाय की पूरी गद्दी दुलारी को मिली, चौमुहानी कीदायीं तरफ और छक्कन प्रसाद ने नया स्वतंत्र व्यवसाय शुरू किया, चौमुहानी की बायीं तरफ। दाँव-पेंच के विरासत में प्राप्त गुण सुगबुगा उठे (फर्क बस ये था कि पहलवान पिता अखाड़ाई उठा-पटक वाले दाँव-पेंच में महारत रहते थे, जबकि छक्कन प्रसाद का साबका दिमागी दाँव-पेंच से था) उन्होंने बड़ी सावधानी और कुशलता से 'बमशंकर भंडार' नामक कस्बे के तत्कालीन नंबर वन मिष्ठान्न निर्माण गृह के एक चतुर कारीगर पर हाथ साफ कर लिया। दाँत पर दाँत बैठाकर छक्कन प्रसाद, उस चतुर कारीगर को अपनी मान्यता के अनुसार एक मोटी तनख्वाह महिनवारी देना तय कर बैठे। दुलारी के कान लहक गये। तीन-तीन चूल्हों की धाँह में तपकर वह जितना कमायेगी, उतना उस पेट निकले कारीगर को। छक्कन प्रसाद ने उसे अपने स्वतंत्र व्यवसाय की स्वतंत्रता का वास्ता देकर चुप कराया। दुलारी उन पत्नियों में से नहीं थी जो दूसरे लोक में जाते पतियों के पीछे-पीछे उनका अनुसरण करती चली जाती थीं। उसने छक्कन प्रसाद को असगरे जन्नत (?) की यात्रा पर विदा कर दिया। जन्नत के रास्ते पर चलने की कलयुगी

चाल भी विचित्र थी। पैरों को बस टिका लेना था और दिमाग को दौड़ाते जाना था। छक्कन प्रसाद आरंभिक झटकों के बाद टिक गये थे मैदान में। इधर दुलारी से एक साथ तीन-तीन चूल्हे न सँभले, तब उसने कचरी और जलेबी को ऐसे मैनेज किया कि वह एकमुश्त कचरियाँ बनाकर रख देती अलस्सुबह और जलेबियाँ ऑन डिमांड गरमागरम छनती जातीं। दाम वही पहले वाला। एक रुपइए की जलेबी, अठन्नी की कचरी।

जब उन्नीस सौ निन्नानवे का कलैंडर खुला, तब स्थिति ये बनी कि चिल्लागंज चौमुहानी से 'बमशंकर भंडार' को, 'छक्कन प्रसाद एंड संस' नामक प्रतिष्ठान चुनौती देने लगा। छक्कन प्रसाद के सत्तू की सोंधी कचौड़ियों, सू... सू... समोसों और मस्त लालजामुन ने कस्बे भर में धूम मचा दी। लोग वहाँ उधियाने लगे और कस्बे भर की मक्खियों ने दुलारी और मुसमातिन की कड़ाहियों पर धावा बोल दिया। न कोई पिअजुआ को पूछता अब, न कचरी को, न जलेबी को। इन चीजों के नाम ही इतने धुर देहाती प्रतीत होने लगे थे कि जीभें उचारने में लजाती थीं। दुलारी के बोरे के नीचे कॉपियों का ढेर बढ़ता जा रहा था, जबकि दुलारी ने कबाड़ी से कॉपियाँ खरीदनी बंद कर दी थीं। जरूरत ही क्या थी उसकी! सारी कॉपियाँ अब टिंकू, पिंकू, मिंटू, रिंकू का प्रताप थीं। दुलारी का आसन ऊँचा होता जा रहा था, लेकिन उसका कद घटता जा रहा था।

मुसमातिन के पास शिक्षा न थी, अक्षर ज्ञान न था। छक्कन प्रसाद और दुलारी के पास पढ़ने, न पढ़ने के किस्से थे। उसके पास तो कोई ऐसा किस्सा न था लेकिन इतना ज्ञान उसे होने लगा था कि काली कड़ाही, उसमें पड़ा काला तेल और भिनकती काली मक्खियाँ अब आगे उसकी खाली अँतड़ियों को नहीं भर सकतीं। ग्राहक घटकर आधे से भी कम रह गये थे और दाम जस-के-तस थे। चूल्हा अनमने ढंग से जलता था अब। बेसन, प्याज, इच्छाएँ... किसी का कोई मोल न था। पिछले जमाने में सुना जाता था कि इस जन्म के कर्मों का फल इनसान को अगले जन्म में अवश्य भोगना पड़ता है। अब नये फटाफट जमाने में यह बात चल निकली थी कि जो जैसा करता है, उसका फल उसी जन्म में कभी-न-कभी अवश्य भोग लेता है। लेकिन मुसमातिन जमाने के नाम से चलायी गयी इस उक्ति में भी शामिल न थी।

उसके होने, न होने से दुनिया बेपरवाह थी। उसके साथ जो हो रहा था, जो होता आया था वह उसके किस जन्म का फल था? इस जन्म का तो नहीं हो सकता क्योंकि मुसमातिन ने किसी का कुछ बिगाड़ा न था, न बिगाड़ने की उसकी औकात ही थी।

तब संभव है उस पर पिछले जमाने वाली उक्ति ही लागू होती थी और ये भी असंभव नहीं कि वक्त आगे बढ़ गया था, वह पिछले जमाने में ही छूट गयी थी। जो भी हो, अपनी हथेलियों पर सिक्कों की लगातार गरमाहट वह तभी महसूसती थी, जब उसी तरह के पुराने जमाने के ग्राहक अपनी चप्पलों पर देहात की धूल चिपकाये सामने आ खड़े होते। इन्हीं दिनों चिल्लागंज की ऐतिहासिक चौमुहानी पर एक और घोषणा की गयी। हालाँकि पहले वाली घोषणा के विपरीत यह निहायत अस्मरणीय थी। हकीकत यह थी कि ये घोषणा थी ही नहीं। यह एक फुसफुसाहट भर थी, जिसे चौमुहानी ने सुनना जरूरी नहीं समझा। मुसमातिन अपनी बोरिया-झोरिया समेटकर चल पड़ी। नहीं, वो जीवन का खेल समाप्त करने नहीं जा रही थी। एकदम सिरे से फालूत और अचाहनीय लोगों में भी भगवान जाने कहाँ से ऐसी जिजीविषा भर देता है! उसके हिस्से सिर्फ रोना था और उसके लिए रोने वाला कोई न था... उसके लिए जीवन एक मजाक था। लेकिन देखिए! मुसमातिन अब भी जीने के लिए पैंतरेबाजी कर रही थी। उसने चूल्हा कड़ाही जमा दी चौमुहानी से कोस-डेढ़ कोस दूर पड़ने वाली हाट में।

मुसमातिन के जाने से पहले चौमुहानी पर रोचक ड्रामा हुआ। ठीक है कि कड़की के इन दिनों में दुलारी ने कॉपी के पन्नों की एवज में उससे दो रुपइया वसूलना छोड़ दिया था, पर इसका ये मतलब तो नहीं था, जो तब हुआ... दुलारी मुसमातिन के गले में दोनों बाँहें डालकर रो पड़ी। मुसमातिन भी बकबका गयी, लेकिन उसकी आँखें सूखी थीं। ऐसे मर्मभेदी विदाई समारोह का कारण उन दोनों का बरसों पुराना साथ तो था ही। यह बात भी महत थी कि दोनों का इस सत्य से एक साथ साक्षात्कार हुआ था कि नमक भी नमक का प्रतियोगी हो सकता था। वे दोनों ही पिअजुआ और कचरी जैसी दो नमकीन चीजें सालों से बेचती आयी थीं, लेकिन एक-दूसरे के कारण उनके धंधे पर कभी आँच नहीं आयी। लेकिन 'छक्कन प्रसाद एंड सन्स' की नमकीन समोसा, कचौड़ी ने उनके सारे ग्राहक हड़प लिये थे। तो इस सफल दृश्य के बाद मुसमातिन तो विदा हुई। अब बात पथरकरेज दुलारी के आँसुरी की।

दुलारी के आँसू कैसे थे? ऐसा थोड़े ही न था कि छक्कन प्रसाद आप छप्पन भोग लूट रहे थे और दुलारी को डिच दे दिया उन्होंने। दुलारी आज भी उनके प्रेम और सम्मान की एकछत्र अधिकारिणी थी। दो कमरे का मजबूत घर, पिछले घर की नींव पर ही उठ गया था। बच्चे चारों सरकारी स्कूल की छड़की फाँदकर पब्लिक स्कूल में भर्ती हो चुके थे। दाँत-पर-दाँत दबाकर अब चतुर कारीगर को पगार नहीं देना होता था। दरअसल उसकी चतुराई अब छक्कन प्रसाद के अपने रोब में दबी पड़ी थी। लेकिन

दुलारी फिर भी दुखी। उसके अंदर एक जिद थी। एक मोह था कि वह जलेबी की भुलभुलैया से निकल न पाती थी, न कचरी की गंध को अपनी साँसों से बेदखल ही कर पाती थी। जिस द्वंद्व और भावात्मक उथल-पुथल के शिकार चारेक साल पहले छक्कन प्रसाद हुए थे, वही सब दुलारी को भी अपने गिरफ्त में ले चुका था। हालाँकि इस द्वंद्व का स्वरूप उससे भिन्न था। छक्कन प्रसाद की सोच उन्हें आगे की ओर खींचती ले जा रही थी, उस बार। इस दफे, दुलारी की सोच उसे पीछे खींचती थी। जब वह बच्चों को अंग्रेजी वाक्यों के छोटे-छोटे डेग भरते देखती, पब्लिक स्कूल से लौटते देखती, अच्छे कपड़े पहने देखती, जीवन के छोटे-छोटे सुख भोगते देखती, छक्कन प्रसाद के शरीर का बढ़ता जाता भराव देखती, उनके कपड़ों से टपकता रुआब देखती, बरसात में मजबूत छत के नीचे सोये घर को देखती... तो उसे ग्लानि होती अपने पर कि क्या वह अपने लोगों के सुख की बैरन हुई है! उस पहली वाली जिंदगी में ऐसा सुख प्राप्य था कभी! फिर भी क्यों खुश नहीं हो पा रही थी दुलारी? इस झख मारने वाले धंधे को समेटकर छक्कन प्रसाद का हाथ क्यों नहीं बाँटती? छक्कन प्रसाद ने उसे अभी तक अपनी मनमानी करने दी। लगभग घाटे का धंधा... इससे निकालकर, बात-लात से ही सही, वह अपने साथ जोत सकते थे दुलारी को। पर दुलारी की इच्छा का ऐसा सम्मान! दुलारी अपने आप को दुत्कारती जाती थी। लेकिन उसका आँचल चौमुहानी की दाहिनी तरफ के खूँटे से बँधा था, उसे तुड़ाकर वह सड़क पार 'छक्कन प्रसाद एंड संस' तक बढ़ ही न पाती थी।

वह गर्मी की एक ठंडक भरी शाम थी। पछुए की लंबी-लंबी लहरें चमड़ी को जुड़ा रही थीं। टिंकू, पिंटू, मिंटू, रिंकू पड़ोस के घर गये थे, जहाँ दीवार के ताखे पर एक ब्लैक एंड व्हाइट पोर्टेबल टी.वी. रहता था। दुलारी उसी सदाबहार उद्विग्न मन से दीये में तेल भर रही थी। छक्कन प्रसाद बिस्तर पर लेटे विचारमग्न थे। घर में अबोल का कोहरा छाया था। दुलारी दिन-ब-दिन चुप-चुप-चुप और रूखी होती जा रही थी। वह दीया जलाकर कमरे में रखने चली। ताखे पर उसे रखकर वह मुड़ ही रही थी कि पीछे से उसकी कलाई पकड़ ली गई। दुलारी ने आँखें मूँद लीं। कलाई पर कसाव-खिंचाव बढ़ा और दुलारी को बिस्तर पर बिठा दिया गया। दुलारी की पीठ थी छक्कन प्रसाद के आगे। छक्कन प्रसाद उसके बराबर खिसककर आये...

"दुलारी... जी खराब है का?" ...दुलारी ने सिर डुलाया। छक्कन प्रसाद ने उसका चेहरा अपनी ओर उलट दिया - "चुप्प काहे है?" दुलारी चुप। चुप्पी का कारण चुप रहकर भी बताया जा सकता है। छक्कन प्रसाद ने दुलारी का सिर अपने कंधे से टिका दिया। उनकी धड़कन दुलारी के कानों में धड़कने लगी। दुलारी ने तभी दिल से चाहा कि

छक्कन प्रसाद एक बार उससे अपने पास - चौमुहानी की बायीं ओर आ जाने के लिए कहें। एक बार कहें कि दुलारी की जरूरत है उन्हें। उनका हर एक पल दुलारी के साथ का मुहताज है। हुआ... हुआ ये भी हुआ... कि उसने जो-जो चाहा, वही-वही उसके कानों में पड़ा। आवाज छक्कन प्रसाद की थी। दुलारी ने तड़पकर उन्हें देखा। आँखें सच्ची थीं उनकी। वहाँ वही लिखा था, जो दुलारी ने सुना था। उसके आँसू आभार में ढल-ढल गिरे। ठीक उसी समय दुलारी ने निर्णय किया कि वह कभी भी खूँटे में बँधा अपना आँचल तुड़ाकर सड़क के उस पार छक्कन प्रसाद की दुकान तक नहीं जाएगी। वो कचरी और... वो जलेबी उसकी दुकान (?) में बिकने वाली चीजें भर नहीं थीं, वे उसके अपने होने की शर्त थीं। दुलारी जूझेगी अपने मोर्चे पर... कपास का एक फूल आकर कलाई पर खिल गया। वहीं से उसने यात्रा शुरू की। वह थाहता गया केहुनी को, बाँह को, कंधे को... उसकी तलाश चली जाती थी। दुलारी अपने आप को पसराकर कपास के फूल की चाल महसूसती थी। फूल देह पर ऐसे थिरकता था जैसे झोंके लहरों में घुसपैठ करते हैं। जब वह मैदान पर सरपट भागता था, तब उसके सारे रोएँ खड़े रहते।

जब चढ़ता था वह पहाड़ पर, तो रोएँ सारे छितरकर उसे ढाँप लेते और जब वह घाटियों में उतरता, तो रोएँ उसके अपनी धड़कन थाम लेते। पलकों को वह जलतरंग-सा साधता और एड़ियों की दरारों में फँस-फँसकर रह जाने का आनंद लेता। कपास का फूल रोएँ-रोएँ को सूँघता था। तुम्हीं हो पर तुम नहीं! दुलारी आवेग में कँपकँपाती पूछती थी... जहाँ मैं हूँ वहाँ अँधेरा अशेष... तुम पाओगे कैसे मुझे...? कपास का फूल लहराकर अँधेरे के ऊपर मँडराने लगा। फूल ने चखा अँधेरे को। उसने लोटकर जिया उस तिलस्मी स्वाद को। वह अपने रोएँ से अंधकार पर निशान बनाये जाता था। इस पर मैंने अपना नाम लिख दिया... अब ये अंधकार मेरा हुआ। दुलारी ने आँखें मूँद लीं। गहरी एक साँस ली गयी, तभी कपास का फूल नासिका-ग्रंथियों के ठीक नीचे, उसके होठ के ऊपर वाले तिल पर जाकर बैठ गया। साँस छोड़ी गयी... उसी क्षण भूमिकाओं की अदला-बदली हुई। दुलारी कपास का फूल बनकर साँस के प्रवाह में उड़ गयी। पीछे, छक्कन प्रसाद गहरी साँसें लेते निश्चल पड़े थे।

दुलारी यदि सिद्धांत रूप से छक्कन प्रसाद के साथ न थी तो उसका उनकी कमाई पर सुख भोगने का कोई नैतिक अधिकार न बनता था। उसने एकदम निजी स्तर पर एक नया फ्रंट खोल दिया। पिछले दिनों घर में तरकारी के साथ दाल सीझने लगी थी भोर-भोर। रात में दो-दो तरकारियाँ बन जातीं। कभी सेवई, कभी चटनी... दुलारी ने दाल तरकारियों की फौज, मीठा सब त्याग दिया। छूछी रोटी और एक तरकारी।

इधर जब से घर की आय में उछाल आ गया था, दुलारी अपनी कमाई के पैसों से श्रृंगार-बनाव की चीजें ही खरीदती थी। अब उन सिक्कों से घर का सौदा आता। हालाँकि उनके घर में आने वाले राशन के आगे दुलारी का सौदा लवा-दुआ के समान ही था। उसकी कमाई की आखिर औकात ही क्या थी! लेकिन जितना हो सके, वही सही। छक्कन प्रसाद को पहले भी दुलारी के सजने-धजने की चीजें लाने का अभ्यास न था क्योंकि ये मोर्चा दुलारी ही सँभालती थी। अब दुलारी ने परव-त्यौहार पर छक्कन प्रसाद द्वारा लायी जाने वाली साड़ियों पर भी सख्ती से नो थैंक्यू... लिख दिया था।

पिछले दिनों जब चौमुहानी की दाहिनी तरफ बस मुसमातिन और दुलारी बच गयी थी, तब दुलारी हिसाब-किताब के लिए बुरी तरह मुसमातिन पर आश्रित हो गयी थी। मुसमातिन बूढ़ी थी। अनपढ़ थी। लेकिन उसका मुँहजबनिया हिसाब ठोंका-पीटा था। वह शुरू से बेसहारा थी और जब इनसान को मालूम हो जाए के सहारा है नहीं कहीं, तो वह आँख नाक-कान सब खोल करके अपनी जरूरत की चीजें सीख जाता है। दुलारी के पास शुरू से इस परिस्थिति का अभाव था। पर अब वह चौमुहानी की दायीं ओर एकदम अकेली थी। बेसहारा। लेकिन अभी उसे यह हैरतजन्य अनुभव हुआ कि जिस चीज को सीखने में वो पस्त होकर टाल-मटोल करती थी, वह वैसी पेचीदा तो थी ही नहीं। वह सीख रही थी। लेकिन गाहे-बगाहे, सरे सड़क उसका हिसाब गड़बड़ाता। उसे सख्त झिड़कियाँ मिलतीं ग्राहकों से। लेकिन उसने चार-चार बच्चों को अपने ठीक सामने घुटनों पर चलते... सहारा लेकर उठते... लड़खड़ाते... चोट खाते... डेगा-डेगी चलते देखा था। ठेस, अपने पैरों पर खड़े होने की एक मीठी-सी शर्त थी। उसे एहसास था। दुलारी के अपने चेहरे से सस्ते पाउडर की परतें धुल चुकी थीं। उसका असली रूप अब सामने था, छक्कन प्रसाद जिसे देखकर चकित थे। दुलारी ने अपने पाउडर, कुंकुम के डिब्बे उलटकर खाली कर दिये थे। डिब्बों से अलग हुई उन चीजों से ही दुलारी ने अपने चारों ओर घर में एक रेखा खींच रखी थी। रिश्ते घर के, पूर्ववत ही थे। पर हर कहीं उस रेखा की परछाईं पड़ जाती थी। उस शाम का उड़ा-उड़ा कपास का फूल भी फिर कभी घर में दिखा नहीं।

एक शाम जल्दी-जल्दी अपना काम-धंधा समेटकर दुलारी हाट की ओर चल पड़ी। मुसमानित की खबर लेना जरुरी था। सड़क की ढलान के बाद वाली जमीन पर हाट लगती थी। दूर से ही दुलारी ने देखा, मुसमातिन एक कोना पकड़े बैठी थी। दुलारी झटककर चलती आयी थी, सो बेतरह हाँफ रही थी। मुसमानित के आगे प्रचंड धाह से जलता चूल्हा और तेल का धुआँ उठाती कड़ाही थी। दूर से ही भरभर कर साँसें लेती

दुलारी को ऐसा लगा, मानो मुसमातिन धुएँ की परतों के पीछे से धीरे-धीरे ऊपर उठती जाती हो। मुसमातिन के हाथ तेजी से चल रहे थे। दो हाथों से ही बेसन-प्याज का घोल, कड़ाही में डाली घानी, ग्राहक, सिक्के, सब सँभालना था। लोग उसके गिर्द टूटे आते थे। हाट में आने वाले ग्राहक, दुकानदार सब सिक्के गिनते उसके पास आते थे और खरीदी हुई चीज फूँक-फूँककर खाते थे। मुसमातिन के पास न तो सिर से गिरा आँचल सँभालने की फुर्सत थी, न दुलारी का अपने आपको देखते जाना, देखने की। दुलारी को बड़ा भला-सा अहसास हुआ। उसकी साँसें सामान्य हो चुकी थीं। कदम एकदम थमे थे। कठकरेज दुलारी ने बात-बात पर रोना नया-नया सीखा था। सो, आँसू फिर बड़े आते थे। आँसू जब उसकी केहुनी पर चू कर... नीचे गिरकर थम गया, तब उसने कदम बढ़ाये। दुलारी ने जब मुसमातिन के कंधे पर हाथ धरा, तो वह मुड़ी। प्याज के पकौड़ों की नयी घानी कड़ाही में पड़ चुकी थी। मुसमातिन चौंककर थरथरायी। दुलारी के दो क्षण पहले टपके आँसू की धार चूल्हे की रोशनी में चमक रही थी। मुसमातिन के दाहिने गाल से चूता पसीना काँप रहा था। दुलारी कड़ाही में रखी घानी को उलटने लगी। मुसमातिन उसके बाद से हाट की चहल-पहल खत्म होने तक घुटनों पर ठोड़ी टिकाये बैठी रही। दुलारी ग्राहकों को निबटाती गयी। जैसे बरसों से अछूते पड़े सितार के तार को कोई छू दे, तो थरथराता चला जाता है वैसे ही चूल्हे के आगे पसीने से नहायी मुसमातिन काँपती चली गयी।

हाट से समान उठाये जाने लगे। एक औरत सुखी थी, उसने दूसरी को बताया। दूसरी ने पहली की हरे कोर की नयी सफेद साड़ी का आँचल अपनी मुट्ठी में भरा। पहली औरत अब दोनों जून मस्त चीजें खाती थी... वह खीं...ss... करके बताती जा रही थी। उसके देवर की पूतोहें अपने बच्चों को उसके पास भेजने लगी थीं। पहली औरत ने भेद से फुसफुसाकर वजह भी साफ की - सब माल का मामला था। वह समझती थी, फिर भी बच्चों के अरमान पूर देती थी। दूसरा था कौन उसका? अब तो उसे उन्हीं लोगों के बीच मरना-जीना था। हफ्ते में तीन दिन ये हाट और तीन दिन सड़क के उस पार वाली हाट। एक दिन ऑफ। निर्मोहपने की कगार से फिर मोह-जाल तक खिंच आयी थी वो। चंगा। और दूसरी? पहली ने कोंचकर दूसरी से पूछा - वह अपने पति के साथ उसके धंधे पर क्यों नहीं चली जाती? दूसरी की मुट्ठी खुल गयी। उसमें पकड़ा पहली की साड़ी का आँचल छूट गया। अब खुली तलहथी पर दूसरी का अपना पसीना था और उसकी रेखाओं से सनी जड़ों से जुड़ी अपनी सिर्फ अपनी चीजों की खुशबू थी। दूसरी उन्हें बचाकर रखना चाहती थी... तो वह वहीं हाट में क्यों नहीं आ जाती - पहली ने पूछा, दूसरी ने उसकी आँखों में आँखें डाल दीं... हर तरह की लड़ाइयाँ एक ही मैदान से नहीं लड़ी जा सकतीं। पहली के सामने जीवन को बचाने

का प्रश्न था, कभी... दूसरी के सामने आत्मा को बचाने का सवाल था, अभी। दोनों उठ खड़ी हुईं। रास्ते अलग थे। ऐसा होता ही रहता है कि बरसों का साथ जिस अपनापे का अहसास नहीं करा पाता, उसी पर दूरी अपनी उँगली घुसेड़कर आपको बेचैन कर देती है।

दाढ़ी वाले बूढ़े की तलहथी पर ध्यानमग्न बैठे छक्कन प्रसाद कोई गंभीर चीज विचार रहे थे। 'बंमशंकर भंडार' की मजबूत छतदार दुकान और शीशे में बंद मिठाई-समोसों को वे एक मामूली शेड वाले ओपन स्टॉल से ही लँगड़ी लगा चुके थे। उनकी दुकान चौमुहानी पर बजरंगबली की मूर्ति के समान थी, जिसके आगे रुके बिना आना-जाना संभव न था। ठँसी जेब और उर्वर दिमाग उन्हें कुछ नया करने को प्रेरित कर रहा था। ग्राहकों की नब्ज को उन्होंने उँगली से ढूँढ़ लिया था। वे जानते थे कि पकड़पुर सदर में एक ऐसे मध्यमवर्ग का उदय हो चुका था, जिसकी जितनी रुचि पैसे कमाने में थी उतनी ही, पैसे खरचने में भी थी। वक्त दो सहस्राब्दियों का संधि-काल था और वे नये युग में अपने कस्बे को कोई नया स्वाद देना चाहते थे। ऐसा कहें कि तीसरी सहस्राब्दी में, कस्बे भर में स्वाद के बरक्स अवाँगार्द बनकर चलना चाहते थे। एतमेव एक सनके हुए जुआरी की तरह उन्होंने अनूठा दाँव खेला। चतुर कारीगर, जिसे वे 'बमशंकर भंडार' से टेभकर लाये थे, इनमें भी उनका मुहरा बना। कारीगर का मामूजाद भाई पास के शहर के एक रेस्तराँ में भर्ती था। चतुर कारीगर, मालिक छक्कन प्रसाद के खर्चे पर वहाँ गया और बड़ी बारीकी से वह शहर से पाकड़पुर सदर के लिए ले आया - एक लच्छे जैसी, पिल्लूनुमा सफेद गुज-गुज नमकीन चीज और एक क्रीमदार, फोम की तरह गब-गब मीठी चीज। आइसक्रीम और कोल्ड ड्रिंक को तो छक्कन प्रसाद पाकड़पुर सदर से ही बैठे-बैठे चुन चुके थे। जनवरी एक, दो हजार से जिस रोमांचकारी स्वाद से कस्बे को परिचित कराना था, उसकी बाबत भीषण-स्तर पर तैयारियाँ शुरू हुईं, जिनके अंतर्गत 'छक्कन प्रसाद एंड सन्स' वाले बोर्ड के नीचे 'एकमात्र फास्ट फूड सेंटर' लिखना भी शामिल था। कुछ जानकारों ने माथा ठोंका - इस अच्छी भली उड़ती दुकान को छोड़कर 'फास-फूड' खोलने का क्या मतलब? पचासवें साल में ही सठिआया जाना पड़ता है...! कुछ जानकार उत्सुकता से बस चौमुहानी की ओर देखे जा रहे थे। छक्कन प्रसाद लीटरों पसीना बहा रहे थे। उन्हें विश्वास था कि वे बाजार को जीतेंगे, पाकड़पुर सदर को जीतेंगे और एक दिन... एक किसी दिन वे दुलारी को भी जीत लेंगे।

ये चाउर...चौ...चौमीन क्या हुई? वो...! पेस्...पेस्...पेस्टर...ई...सॉफ्टी, पेप्सी। टिंकू, पिंटू, मिंटू, रिंकू, गुनगुना उठे। हवाएँ इधर से छेड़तीं, उधर से छेड़तीं...

गुद...गुद...गुद... गुद... गुदगुदी। टिंकू पानी पीते-पीते दीवार से केहुनी और कमर टिकाकर खड़ा हो जाता - ये दिल माँगे मोर... आ...हा...हा...हा पड़ोस की दीवार के ताखे पर रखे टेलीविजन में फिल्मी गानों, धारावाहिकों, फिल्मों, और तो और क्रिकेट मैचों के भी मुकाबिल विज्ञापनों को पहली बार बढ़त प्राप्त हुई। घर में खुशी की फुहारें बरस रही थीं और दुलारी धुएँ वाले चूल्हे के आगे लोराती थी। माँ ऐसी क्यों रहती है? उदास...रोईनी...? जवाब मिलेगा इसका भी। खुद दुलारी देगी और कौन? दुलारी चारों सूरती-मूर्तियों के आगे भभकती, खुली पड़ी थी। बात थी वही पुरानी... खोती जा रहीं चीजों को बचा लेने वाली। स्थिति जरूर नयी थी। माँ को इस तरह बेपर्दा, बच्चों ने नहीं देखा था कभी। बेपर्दा पर अबूझ! कभी लगती दयनीय, कभी दीखती मजबूत। कभी बे-सिर पैर की, कभी-कभी मन भर आता है क्यों उसकी बातों से? माँ सही थी तो क्या पापा गलत थे? कचरी-जलेबी में ही सने रहें, तो वे अमीर बन पाएँगे कभी! कैसी चीजों को बचाने की जिद थी! एक का तो नाम भी कस्बे में प्रचलित गाली से मिलता-जुलता था... बस पहले अक्षर को वर्णक्रम में ठीक उसके बाद पड़ने वाले अक्षर से प्रतिस्थापित कर देना भर था। अलस्सुबह बनाकर रख दी गयी सेराई कचरी... दाम अठन्नी... एक रुपइए की चट-चट जलेबी... जमाना बदल रहा था। स्वाद आमूल-चूल बदल गया था।

तो क्या हर नया, पुराने की बलि माँगता है**...?**

...पुराने में ही लिसड़े रहें**,** नये की चाहत करें हो न**?**

...नये के साथ-साथ क्या पुराने को भी सँजोये नहीं रखा जा सकता है? बात सिर्फ कचरी की या जलेबी की थी? कि साथ-साथ, एक पूरी परंपरा... खुद दुलारी जैसों को उखाड़कर बहा दिये जाने की थी? सवाल सबको बचा लेने का था...।

"माँ, क्या तुम बाजार में इस तरह टिक पाओगी?" - बड़ा बेटा टिंकू, उम्र सोलह साल। दुलारी ने चेहरा उठाया। पहली बार बदले जमाने के इस नंगे, जेनुइन और आधुनिक किस्म के प्रश्न से उसका साबका पड़ा था। हे भगवान्! और इतना बुद्धिगर सवाल उठाने वाला कौन... उसी का बेटा! इतनी अकल...! दीये की रोशनी में दुलारी की नाक की लौंग चमक रही थी। उसे टिकना था बाजार में। दुलारी ने अपने बिछुए से फर्श की मिट्टी पर लकीर खींची... बच्चे सारे जा चुके थे। बस मिंटू... बेटा नंबर तीन, हथेली पर ठुड्डी टिकाये बैठा था... जिसकी लार में जलेबी का रस अभी भी घुला बचा था।

छक्कन प्रसाद के स्टॉल में क्रांतिकारी परिवर्तन किये जा रहे थे। एक लंबे से स्टैंड का निर्माण करवाया गया, जिस पर प्लेट रखकर फटफटिया भोजन किया जा सके। ये सुविधा विशेषत: औरत और बच्चों के लिए भी। भड़काऊ रंगों में शेड की रँगाई चल रह थी। छक्कन प्रसाद का काउंटर अलग, एक टेपरिकॉर्डर, कुछ अप-टू-डेट कैसेट और छोटा फ्रिज... सड़क के इस पार दुलारी के द्वीप का दृश्य यह था कि बाँस के खंभों पर प्लास्टिक की शेड लग रही थी। ऊपर सफेद कपड़े की एक बैनरनुमा चीज। दुलारी कमर पर हाथ धरे सारे काम करवा रही थी। उसकी चूल्हा-कड़ाही शेड के नीचे आ गयी थी और सामने लगाये गये थे लकड़ी के दो बेंच। बाल्टी... प्लास्टिक के कप, केतली... इन सबका जुगाड़ दुलारी ने किया था, अपने स्त्री-धन की मोटरी से हुँसली और पायल खिसकाकर। लेकिन इस सब पर ध्यान कौन देता है, जब सड़क की बायीं ओर इतना जबरदस्त ताम-झाम चल रहा हो। किसी ने नहीं दिया। खुद छक्कन प्रसाद ने बात नोट नहीं की। उनके पास फुरसत कहाँ थी? बल्कि वे तो न पचा पाते थे खाया ढंग से, न सो ही पाते थे। लेकिन उस आखिरी रात - इकतीस दिसंबर की रात जब धकधकाते कलेजे से उन्हें रात भर बेसब्र जागना चाहिए था, वे झपक गये... तभी एक बूढ़े की सफेद दाढ़ी उनके तलवों पर सहरी... दाढ़ी उनके घुटनों पर लहरायी... उनकी नाभि के इर्द-गिर्द दाढ़ी चुभने लगी। दाढ़ी ने कलाई के बालों को गिना और कंठ पर दाढ़ी ने कुछ ढूँढ़ा। दाढ़ी भूमध्य को सूँघती थी और बस... बूढ़े ने तलहथी पर धरे छक्कन प्रसाद को उछाल दिया... बूढ़ा फिर से उन्हें लोक कर उछाल रहा था... बार-बार छक्कन प्रसाद कभी हवा में, कभी तलहथी पर। तलहथी पर धरकर बूढ़े ने उन्हें चूमा और वह नाचने लगा। छक्कन प्रसाद चूमे जाते थे, उछाले जाते थे, और नाचते हाथों से लोके जाते थे। उनकी विचित्र मूँछों में वैसी ही विरल मुस्कान अँटकी थी, जैसी अपना हश्र जानने वाले उस शिकार की होती है, जो शिकारी के पंजों के ठीक बीच में फँसा हो।

तो वह शुभ दिन आया। छक्कन प्रसाद एंड सन्स फास्ट फूड सेंटर - चाऊमीन, पेस्ट्री, सॉफ्ट ड्रिंक्स... आइसक्रीम की एंट्री अप्रैल में होना तय किया गया। छक्कन प्रसाद ने पूरे कस्बे को टाइम-बम में बाँधकर रिमोट के एक झटके से उड़ा दिया था। तीसरी सहस्राब्दी का गूढ़ार्थ बूझने वाले कस्बे के सारे जागरूक, टीवीजीवी, आधुनिक लोग, जो उस फास्ट-फूड सेंटर पर टूट पड़ने को आतुर थे और बस कलेंडर बदलने भर का इंतजार कर रहे थे..., चौमुहानी की ओर कूच कर गये। 'बंमशंकर भंडार' की टोपी उछलकर पलट गयी थी और उसके होठ खुले थे। सफेद रसगुल्ले सख्त पड़ गये थे, गुलाबजामुन भरभराकर दरक गये थे और सिंघाड़े पिछली सहस्राब्दी भर के आँसुओं से बोथाए पड़े थे।

और चिल्लागंज चौमुहानी पर दृश्य क्या सजता था? ठीक है, लोग बायीं ओर वाले 'छक्कन प्रसाद एंड संस' की ओर बढ़े आते थे, पर ऐन मुड़ने के वक्त चौमुहानी की दाहिनी ओर का नजारा देखकर ठिठकते थे। दुलारी प्लास्टिक की जिस शेड के नीचे बैठी थी, उसके ऊपर वाले बैनर पर बड़े अक्षरों में लिखा था - 'दुलारी जलेबी सेंटर!' नीचे भी कुछ लिखा था। ये घोषणा थी। फिर घोषणा! वहाँ लिखा था - "प्रति जलेबी मूल्य एक रुपया, पचास पैसे। चार जलेबियों की खरीद पर दो कचरी और एक कप चाय मुफ्त!" मुफ्त...! मुफ्त? क्या चक्कर है? लोग खलबला गये। वे जेब में हाथ डाले, उधर बढ़े जाते थे... क्या माजरा है भई! सबसे हैरानी की बात तो ये थी कि लोग तो लोग, छक्कन प्रसाद एंड सन्स फास्ट फूट सेंटर' के मालिक छक्कन प्रसाद भी उधर ही बढ़े आते थे। वही, माजरा बूझने वाली बात। दुलारी के आसन के पीछे टिन के कनस्तर पर बैठे माइंड बिहाइंड द सीन, मिंटू उस्ताद होठों को गोल कर कोई धुन निकाल रहे थे। उनके रिद्म में झूलते पैरों का कनस्तर पर बजना बदस्तूर जारी था। ध्यान देकर पकड़िए तो सीटी की यह धुन, "टेक बे तss टेक न त गोs ..." वाली उसी ऐतिहासिक, बेलौस टेक पर आधारित लगती थी।